निवृत्तिकुल का संक्षिप्त इतिहास

शिवप्रसाद

निर्ग्रन्थ दर्शन के श्वेताम्बर आम्नाय के चैत्यवासी गच्छों में निवृत्तिकुल (बाद में निवृत्तिगच्छ) भी एक है। **पर्युषणाकल्प** की "**स्थविरावली**" में इस कुल का उल्लेख नहीं मिलता; इससे स्पष्ट होता है कि यह कुल बाद में अस्तित्व में आया। इस कुल का सर्वप्रथम उल्लेख अकोटा से प्राप्त दो प्रतिमाओं पर उत्कीर्ण लेखों में प्राप्त होता है, जिनका समय उमाकान्त शाह ने ई० स० ५२५ से ५५० के बीच माना है। इस कुल में जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण, शीलाचार्य अपरनाम शीलाङ्क सूरि, सिद्धर्षि, द्रोणाचार्य, सूराचार्य आदि कई प्रभावक एवं विद्वान् आचार्य हुए हैं।

निवृत्तिकुल से सम्बद्ध अभिलेखीय और साहित्यिक दोनों प्रकार के साक्ष्य उपलब्ध होते हैं और ये मिलकर विक्रम संवत् की ६ठीं शती उत्तरार्ध से लेकर वि० सं० की १६वीं शती तक के हैं; किन्तु इनकी संख्या अल्प होने के कारण इनके आधार पर इस कुल के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त कर पाना प्रायः असंभव है। फिर भी प्रस्तुत लेख में उनके आधार पर इस कुल के बारे में यथासंभव प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

ऊपर कहा जा चुका है कि इस कुल का उल्लेख करने वाला सर्वप्रथम साक्ष्य है अकोटा से प्राप्त धातु की दो प्रतिमाओं पर उत्कीर्ण लेख। उमाकान्त शाह[1] ने इनकी वाचना इस प्रकार दी है :

१. ॐ देवधर्मोयं निवृत्ति कुले जिनभद्रवाचनाचार्यस्य।
२. ॐ निवृत्तिकुले जिनभद्रवाचनाचार्यस्य।

वाचनाचार्य और क्षमाश्रमण समानार्थक माने गये हैं[2], अतः इस लेख में उल्लिखित जिनभद्रवाचनाचार्य और **विशेषावश्यकभाष्य** आदि ग्रन्थों के रचयिता जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण एक ही व्यक्ति हैं[3]। उक्त प्रतिमाओं में मूर्तिकला की कालगत विशेषताओं के आधार पर शाह जी ने दूसरी जगह इनका काल ई० स० ५५० से ६०० के बीच माना है, जो विशेष सही है। परम्परानुसार जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण की आयु १०४ वर्ष थी, अतः पं० मालवणिया ने इनका जीवनकाल वि० सं० ५४५ से वि० सं० ६५० / ई० स० ४८९ से ई० स० ५९४ माना है[4]।

आचाराङ्ग और **सूत्रकृताङ्ग** की टीका[5] के रचयिता शीलाचार्य अपरनाम तत्त्वादित्य तथा **चउप्पन्नमहापुरिसचरियं**[6] (वि० सं० ९२५ / ई० सन् ८६९) के रचनाकार शीलाचार्य अपरनाम विमलमति अपरनाम शीलाङ्क भी स्वयं को निवृत्तिकुलीन बतलाते हैं। मुनि जिनविजय[7], आचार्य सागरानन्दसूरि[8], श्री मोहनलाल दलीचन्द देसाई[9] आदि विद्वानों ने **आचाराङ्ग-सूत्रकृताङ्ग** की टीका के रचनाकार शीलाचार्य अपरनाम तत्त्वादित्य तथा **चउप्पन्नमहापुरिसचरियं** के कर्त्ता शीलाचार्य अपरनाम विमलमति अपरनाम शीलाङ्क को समसामयिकता के आधार पर एक ही व्यक्ति माना है। पं० मालवणिया और प्रा० मधुसूदन ढांकी[10] ने भी इन आचार्यों की समसामयिकता एवं उनके समान कुल के होने के कारण उक्त मत का समर्थन किया है। इसके विपरीत **चउप्पन्नमहापुरिसचरियं** के सम्पादक श्री अमृतलाल भोजक[11] का मत है कि "यद्यपि दोनों शीलाचार्यों की समसामयिकता असंदिग्ध है, किन्तु उन दोनों आचार्यों ने अपना पृथक्-पृथक् अस्तित्व स्पष्ट करने के लिए ही अपना अलग-अलग अपरनाम भी सूचित किया है, अतः दोनों भिन्न-भिन्न व्यक्ति हैं और उन्हें एक मानना उचित नहीं।" चूंकि एक ही समय में, एक ही कुल में, एक ही नाम वाले दो आचार्यों का होना उसी प्रकार असंभव है जैसे एक ही परिवार में एक ही पिता के दो सन्तानों का एक ही नाम होना; अतः इस आधार पर भोजक का मत सत्यता से परे मालूम होता है। अलावा इसके उस ज़माने में श्वेताम्बर परम्परा के मुनिजनों की संख्या भी अल्प ही थी।

उपमितिभवप्रपंचकथा (वि० सं० ९६२ / ई० स० ९०६), **सटीक न्यायावतार, उपदेशमालाटीका** आदि के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रचयिता सिद्धर्षि भी निवृत्तिकुल के थे। **उपमितिभवप्रपंचकथा** की प्रशस्ति[१२] में उन्होंने अपनी गुरु-परम्परा इस प्रकार दी है :

सूर्याचार्य
|
देल्लमहत्तर
|
दुर्गस्वामी
|
सिद्धर्षि

उक्त प्रशस्ति में सिद्धर्षि ने अपने गुरु और स्वयं को दीक्षित करने वाले आचार्यरूपेण गर्गर्षि का नाम भी दिया है। संभवत: यह गर्गर्षि और कर्मसिद्धान्त के ग्रन्थ **कर्मविपाक** के रचयिता **गर्गर्षि**[१३] एक ही व्यक्ति रहे हों। इसके अलावा **पंचसंग्रह** के रचयिता पार्श्वर्षि के शिष्य चन्द्रर्षि[१४] भी नामाभिधान के प्रकार को देखते हुए संभवत: इसी कुल के रहे होंगे।

अकोटा की वि० सं० की १०वीं शती की तीन धातु प्रतिमाओं पर उत्कीर्ण लेखों में प्रतिमा-प्रतिष्ठापक के रूप में निवृत्तिकुल के द्रोणाचार्य का उल्लेख मिलता है। इनमें से एक प्रतिमा पर प्रतिष्ठा वर्ष वि० सं० १००६ / ई० स० ९५० दिया गया है[१५]। इस प्रकार इनका कार्यकाल १०वीं शताब्दी का उत्तरार्ध रहा होगा।

निवृत्तिकुल में द्रोणाचार्य नाम के एक अन्य आचार्य भी हो चुके हैं। **प्रभावकचरित**[१६] के अनुसार ये चौलुक्यनरेश भीमदेव 'प्रथम' के संसारपक्षीय मामा थे। आचार्य हेमचन्द्र के **द्वयाश्रयमहाकाव्य** के अनुसार चौलुक्यराज भीमदेव के पिता नागराज नड्डूल के चाहमानराज महेन्द्र की भगिनी लक्ष्मी से विवाहित हुए थे[१७]। इसे देखते हुए यह कहा जा सकता है कि उक्त द्रोणाचार्य नड्डूल के राजवंश से सम्बद्ध रहे होंगे। इनकी एकमात्र कृति है **ओघनिर्युक्ति** की **वृत्ति**[१८]। नवाङ्गवृत्तिकार अभयदेवसूरि द्वारा नौ अंगों पर लिखी गयी टीकाओं का इन्होंने संशोधन भी किया। इनके इस उपकार का अभयदेवसूरि ने सादर उल्लेख किया है[१९]। परन्तु इनके गुरु कौन थे, इस सम्बन्ध में न तो स्वयं इन्होंने कुछ बतलाया है और न किन्हीं साक्ष्यों से इस सम्बन्ध में कोई सूचना प्राप्त होती है।

द्रोणाचार्य के शिष्य और संसारपक्षीय भतीजा सूराचार्य भी अपने समय के उद्भट विद्वान् थे[२०]। परमारनरेश भोज (वि० सं० १०६६-१११९) ने अपनी राजसभा में इनका सम्मान किया था[२१]। इनके द्वारा रचित **दानादिप्रकरण**[२२] नामक एक ग्रन्थ उपलब्ध है। वह संस्कृत भाषा के उच्च कोटि के विद्वान् थे।

निवृत्तिकुल से सम्बद्ध तीन अभिलेख विक्रम संवत् की ११वीं शती के हैं। इनमें से प्रथम लेख वि० सं० १०२२ / ई० स० ९६६ का है जो भाषा की दृष्टि से कुछ हद तक भ्रष्ट है और धातु की एक चौबीसी प्रतिमा पर उत्कीर्ण है। श्री अगरचन्द नाहटा[२३] ने इस लेख की वाचना इस प्रकार दी है :

गच्छे श्रीनृर्वितके तते संताने पारस्वदत्तसूरीणांवृसभ पुत्र्या सरस्वत्याचतुर्विंशति पटकं मुक्त्यथ चकारे॥
प्राप्तिस्थान-चिन्तामणि पार्श्वनाथ जिनालय, बीकानेर।

द्वितीय लेख आबू के परमार राजा कृष्णराज के समय का वि० सं० १०२४ / ई० स० ९६८ का है, जो आबू के समीप **केर** नामक स्थान से प्राप्त हुआ है। यह लेख यहां स्थित जिनालय के गूढ़मंडप के बांयी ओर स्तम्भ पर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्कीर्ण था। मुनि जयन्तविजय जी[२४] ने इस लेख की वाचना दी है, जो कुछ सुधार के साथ यहां दी जा रही है:

विष्टितक [निवृत्तक] कुले गोष्ठ्या वि (व)र्द्धमानस्य कारितं। [सुरूपं] मुक्तये बिंबं कृष्णराजे महीपतौ ॥ अ (आ)षाढ़सु (शु) द्वषष्ठ्यां समासहस्रे जिनैः समभ्यधिके (१०२४) हस्तोत्तरादि संस्थे निशाकरे [रित] सपरिवारे ॥
[ना वा] हरे रं-: नरादित्यः सुशोभतां घटितवान् वीरनाथस्य शिल्पिनामग्रणीः पर [म्] ॥

यद्यपि इस लेख में निवृत्ति कुल के किसी आचार्य या मुनि का कोई उल्लेख नहीं है, परन्तु आबू के परमारनरेशों के काल-निर्धारण में यह लेख अत्यन्त मूल्यवान है।

वि॰ सं॰ की ११वीं शताब्दी का तृतीय लेख वि॰ सं॰ १०९२/ ई॰ स॰ १०३६ का है[२५]। इस लेख में निवृत्तिकुल के **आम्रदेवाचार्यगच्छ** का उल्लेख है। लेख का मूलपाठ इस प्रकार है :

संवत् १०९२ फाल्ग (ल्गु) न सुदि ९ रवौ श्री निवृत्तककुले श्रीमदाम्रदेवाचार्यगच्छे नंदिग्रामचैत्ये सोमकेन जाया..... सहितेन तत्सुतसहजुकेन च निजपुत्रसंवीरणसहिलान्वितेन नि [:] श्रेयसे वृषभजिनप्रतिमा - वार्थ (?) कारिता।
प्रतिष्ठास्थान- नांदिया, प्राप्ति स्थान- जैन मंदिर, अजारी,

वि॰ सं॰ की १२वीं शताब्दी के चार लेखों[२६] [वि॰ सं॰ ११३० / ई॰ स॰ १०७४, तीन प्रतिमा लेख, और वि॰ सं॰ ११४४/ ई॰ स॰ १०८८ एक प्रतिमालेख) में भी निवृत्तिकुल के पूर्वकथित आम्रदेवाचार्यगच्छ का उल्लेख है। इन लेखों का मूलपाठ इस प्रकार है :

संवत् ११३० ज्येष्ठ शुक्लपंचम्यां श्री निवृत्तककुले **श्रीमदाम्रदेवाचार्यगच्छे** कोरेस्व (श्व) रसुत दुल्ल (र्ल) भश्रावकेणेदं मुक्तये कारितं जिनयुग्ममुत्तमं ॥
प्राप्तिस्थान- आदिनाथ जिनालय, लोटाणा।

[संवत् ११३०] ज्येष्ठशुक्लपंचम्यां श्री निवृत्तककुले **श्रीमदाम्रदेवाचार्यगच्छे** कोरेस्व (श्व) रसुत दुर्लभ [श्रावकेणे] दं मुक्तये कारितं जिनयुग्ममुत्तमम् ॥
कायोत्सर्ग प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख, प्राप्तिस्थान- पूर्वोक्त।

संवत् ११३० ज्येष्ठ शुक्लपंचम्यां तिहे (निवृ)तककुले **श्रीमदा[म्रदेवाचार्यगच्छे]**.....
कायोत्सर्गप्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख, प्राप्तिस्थान- पूर्वोक्त।

ॐ ॥ संवत् ११४४ ज्येष्ठ वदि ४ श्री त (नि)वृत्तककुले **श्रीमदाम्रदेवाचार्यगच्छे** लोटाणकचैत्ये प्राग्वाटवंशोद्भवः यांयश्रेष्ठिस [हितेन] आहिल श्रेष्ठिकि (कृ) तं आसदेवेन मोल्यः (?) श्री वीरवर्धमानसा (स्वा) मिप्रतिमा कारिता।
कायोत्सर्गप्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख, प्रतिष्ठास्थान एवं प्राप्तिस्थान- आदिनाथ जिनालय, लोटाणा।

उक्त लेखों में प्रतिमाप्रतिष्ठापक के रूप में इस गच्छ के किसी आचार्य का उल्लेख नहीं मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि निवृत्तिकुल की यह शाखा (आम्रदेवाचार्यगच्छ) ईस्वी ११वीं शती के प्रारम्भ में अस्तित्व में आयी होगी। वि॰ सं॰ ११४४ / ई॰ स॰ १०८८ के पश्चात् आम्रदेवाचार्यगच्छ से सम्बद्ध कोई साक्ष्य नहीं मिलता, अतः यह अनुमान व्यक्त किया जा सकता है कि वि॰ सं॰ की १२वीं शती के अन्त तक निवृत्तिकुल की इस शाखा का स्वतंत्र अस्तित्व समाप्त हो गया होगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वि॰ सं॰ १२८८ / ई॰ स॰ १२३२ का एक लेख, जो नेमिनाथ की धातु की सपरिकर प्रतिमा पर उत्कीर्ण है, में निवृत्तिगच्छ के आचार्य शीलचन्द्रसूरि का प्रतिमाप्रतिष्ठापक के रूप में उल्लेख है। नाहटा[२७] द्वारा इस लेख की वाचना इस प्रकार दी गयी है :

सं॰ १२८८ माघ सुदि ९ सोमे निवृत्तिगच्छ श्रे॰ वौहड़ि सुत यसहड़ेन देल्हादि पिवर श्रेयसे नेमिनाथ कारितं प्र॰ श्री शीलचन्द्रसूरिभिः
प्राप्तिस्थान- महावीर स्वामी का मंदिर, बीकानेर।

वि॰ सं॰ १३०१/ ई॰ स॰ १२४५ का एक लेख, जो शांतिनाथ की प्रतिमा पर उत्कीर्ण है, में इस गच्छ के आम्रदेवसूरि का उल्लेख प्राप्त होता है। मुनि कान्तिसागर[२८] ने इस लेख की वाचना इस प्रकार दी है :

सं॰ १३०१ वर्षे हुंबडज्ञातीय निवृत्तिगच्छे श्रे॰ जरा (श) वीर पुत्र रेना सहितेन स्वश्रेयसे शांतिनाथबिंबं कारितं प्रतिष्ठिता श्रीयाम्रदेवसूरिभिः ॥
प्राप्तिस्थान- बालावसही, शत्रुञ्जय।

वि॰ सं॰ १३७१ / ई॰ स॰ १३१५ में इसी कुल के पार्श्वदेवसूरि के शिष्य अम्बदेवसूरि ने **समरारासु**[२९] की रचना की। पार्श्वदेवसूरि के गुरु कौन थे, क्या अम्बदेवसूरि के अलावा पार्श्वदेवसूरि के अन्य शिष्य भी थे, इन सब बातों को जानने के लिये हमारे पास इस वक्त कोई प्रमाण नहीं है।

वि॰ सं॰ १३८९ / ई॰ स॰ १३२३ का एक लेख, जो पद्मप्रभ की प्रतिमा पर उत्कीर्ण है, में इस कुल के पार्श्वदत्तसूरि का उल्लेख प्राप्त होता है। मुनि बुद्धिसागर[३०] ने इस लेख की वाचना इस प्रकार दी है :

सं॰ १३८९ वर्षे वैशाख सुदि ६ बुधे श्री निवृत्तिगच्छे हूवट (हुंबड) ज्ञा॰ पितृपीमडमातृपीमलदेश्रेयसे श्रीपद्मप्रभस्वामि बिंबं का॰ प्र॰ श्रीपार्श्वदत्तसूरिभिः।
प्राप्तिस्थान- मनमोहनपार्श्वनाथ जिनालय, बड़ोदरा।

इस गच्छ का विक्रम की १५वीं शताब्दी का केवल एक लेख मिला है, जो वासुपूज्य की प्रतिमा पर उत्कीर्ण है। आचार्य विजयधर्मसूरि[३१] ने इस लेख की वाचना इस प्रकार दी है :

सं॰ १४६९ वर्षे फागुण वदि २ शुक्रे हूंबडज्ञातीय ठ॰ देपाल भा॰ सोहग पु॰ ठ॰ राणाकेन मातृपितृ श्रेयसे श्रीवासुपूज्यबिंबं कारितं प्रतिष्ठितं निवृतिगच्छे श्रीसूरिभिः ॥श्रीः॥

श्री पूरनचन्द नाहर[३२] ने भी इस लेख की वाचना दी है, किन्तु उन्होंने वि॰ सं॰ १४६९ को १४९६ पढ़ा है। इन दोनों वाचनाओं में कौन सा पाठ सही है, इसका निर्णय तो इस लेख को फिर से देखने से ही संभव है।

निवृत्तिगच्छ से सम्बद्ध एक और लेख एक चतुर्विंशतिपट्ट पर उत्कीर्ण है। श्री नाहर[३३] ने इसे वि॰ सं॰ १५०६ (?) का बतलाया है और इसकी वाचना दी है, जो इस प्रकार है :

ॐ ॥ श्रीमन्निवृतगच्छे संताने चाम्रदेव सूरीणां। महणं गणि नामाद्या चेल्ली सव्वदेवा गणिनी। वित्तं नीतिश्रमायातं वितीर्य शुभवारया। चतुर्विंशति पट्टाकं कारयामास निर्मलं।
प्राप्तिस्थान- आदिनाथ जिनालय, कलकत्ता।

इस गच्छ का एक लेख वि॰ सं॰ १५२९ / ई॰ स॰ १४७३ का भी है। पं॰ विनयसागर[३४] ने इस लेख की वाचना इस प्रकार दी है :

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सं० १५२९ वर्षे वैशाख वदि ४ शुक्रे हुंबडज्ञातीय मंत्रीश्वरगोत्रे । दोसी वीरपाल भा० वारु सु० सोमा० करमाभ्यां स्वश्रेयसे श्रीनमिनाथबिंबं का० निवृत्तिगच्छे । पु० श्रीसिंघदेवसूरिभिः जिनदत्त चांपा।
प्राप्तिस्थान- आदिनाथ जिनालय, करमदी।

वर्तमान में उपलब्धता की दृष्टि से इस गच्छ का उल्लेख करने वाला अंतिम लेख वि० सं० १५६८ / ई० स० १५१२ का है[35] । यह लेख मुनिसुव्रत की पंचतीर्थी प्रतिमा पर उत्कीर्ण है । इसका मूलपाठ इस प्रकार है :

सं० १५६८ वर्षे सुदि ५ शुक्रे हूँब० मंत्रीश्वर गोत्रे । दोसी चांपा भा० चांपलदे सु० दिनकर वना निव्रत्तगच्छे। श्री मुनिसुव्रतबिंबं प्रतिष्ठितं श्रीसंघदत्तसूरिभिः ॥
प्राप्तिस्थान- शांतिनाथ जिनालय, रतलाम ।

इस गच्छ के आदिम आचार्य कौन थे, यह कुल या गच्छ कब अस्तित्वमें आया, इस बारे में उक्त साक्ष्यों से कोई सूचना प्राप्त नहीं होती और न ही उनके आधार पर इस गच्छ के मुनिजनों की गुरु-परम्परा की कोई व्यवस्थित तालिका ही बन पाती है । यद्यपि मध्यकालीन पट्टावलियों[36] में नागेन्द्र, चन्द्र और विद्याधर कुलों के साथ निवृत्तिकुल के उत्पत्ति का भी विवरण है, किन्तु ये पट्टावलियां उत्तरकालीन एवं अनेक भ्रामक विवरणों से युक्त होने के कारण किसी भी गच्छ के प्राचीन इतिहास के अध्ययन के लिये सर्वथा प्रामाणिक नहीं मानी जा सकतीं । इतना जरूर है कि इस कुल / गच्छ के मुनिगण प्रायः चैत्यवासी परम्परा के रहे होंगे । महावीर की पुरातन परम्परा में तो निवृत्तिकुल का उल्लेख नहीं मिलता; अतः क्या यह कुल पार्श्वापत्यों की परम्परा से लाट देश में निष्पन्न हुआ था ? यह अन्वेषणीय है।

टिप्पणी:

१. U. P. Shah., *Akota Bronzes*, Bombay 1959, pp 29-30.

२. पं० दलसुख मालवणिया, **गणधरवाद**, अहमदाबाद १९५२ , पृ० ३०-३१.

३. वही.

४. वही, पृ० ३२-३४.

५. मोहनलाल मेहता, **जैन साहित्य का बृहद् इतिहास**, भाग ३, प्रथम संस्करण, वाराणसी १९६७, पृ० ३८२ और आगे.

६. **चउप्पन्नमहापुरिसचरियं**, सं० पं० अमृतलाल मोहनलाल भोजक, प्राकृत ग्रन्थ परिषद्, ग्रन्थाङ्क ३, वाराणसी १९६१, प्रशस्ति, पृ० ३३५.

७. मुनि जिनविजय, प्रस्तावना, **जीतकल्पसूत्र**.
(मूल ग्रन्थ उपलब्ध न होने से यह उद्धरण श्री भोजक द्वारा लिखित **चउप्पन्नमहापुरिसचरियं** की प्रस्तावना, पृ० ५५ के आधार पर दिया गया है । यहां उन्होंने ग्रन्थ का प्रकाशनस्थान एवं वर्ष सूचित नहीं किया है.)

८. "प्रस्तावना", **चउप्पन्नमहापुरिसचरियं** , पृ० ५५.

९. मोहनलाल दलीचंद देसाई, **जैनसाहित्यनो संक्षिप्त इतिहास**, मुंबई १९३१, पृ० १८०-८१.

१०. पं० दलसुख मालवणिया और प्रो० मधुसूदन ढांकी से व्यक्तिगत चर्चा के आधार पर ।

११. प्रस्तावना, **चउप्पन्नमहापुरिसचरियं**, पृ० ५४ और आगे.

१२. **उपमितिभवप्रपंचकथा**, हिन्दी अनुवादक पं० विनयसागर एवं लालचन्द जैन, प्रथम एवं द्वितीय खण्ड, **प्राकृत भारती**, पुष्प ३१, जयपुर १९८५, प्रशस्ति, पृ० ४३७-४४०.

१३. मोहनलाल मेहता, पूर्वोक्त, भाग ३, पृ० १११, १२५.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४. वही, पृ० १२४-१२५.

१५. शाह, पूर्वोक्त, पृ० ५७-५९.

१६. "श्रीसूराचार्यचरितम्", **प्रभावकचरित**, सं० मुनिजिनविजय, सिंधी जैन ग्रन्थमाला, ग्रन्थाङ्क १३, अहमदाबाद १९४०, पृ० १५२.

१७. दुर्गाशंकर केवलराम शास्त्री, **गुजरातनो मध्यकालीन राजपूत इतिहास**, भाग १-२, अहमदाबाद १९५३, पृ० १९४ और आगे.

१८. मोहनलाल मेहता, पूर्वोक्त, पृ० ३९४-३९५.

१९. वही.

२०. **प्रभावकचरित**, पृ० १५२-१६०.

२१. वही.

२२. **दानादिप्रकरण**, सं० अमृतलाल मोहनलाल भोजक एवं नगीन जे० शाह, लालभाई दलपतभाई ग्रन्थमाला ग्रन्थांक ९०, अहमदाबाद १९८३.

२३. **बीकानेरजैनलेखसंग्रह**, सं० अगरचंद भंवरलाल नाहटा, कलकत्ता. वीर संवत् २४८२ (ई० स० १९५५), लेखाङ्क ५७.

२४. **अर्बुदाचलप्रदक्षिणाजैनलेखसंदोह**, सं० मुनि जयन्तविजय, भावनगर वि० सं० २००३ (ई० स० १९७६), लेखाङ्क ४८६.

२५. वही, लेखाङ्क ३९६.

२६. वही, लेखाङ्क ४७०, ४७१, ४७२, ४७३,

२७. नाहटा, पूर्वोक्त, लेखाङ्क. १३३५.

२८. मुनिकान्तिसागर, **शत्रुञ्जयवैभव**, जयपुर १९९०, लेखाङ्क १६.

२९. 'समरारासु', **प्राचीनगूर्जरकाव्यसंग्रह**, सं० चिमनलाल डाह्याभाई दलाल, गायकवाड़ प्राच्य ग्रन्थमाला, ग्रन्थाङ्क १३, प्रथम संस्करण, बड़ोदरा १९२०, पृ० २७-३८.

३०. **जैनधातुप्रतिमालेखसंग्रह**, सं० मुनि बुद्धिसागर, भाग २, पादरा ई० सन् १९२४, लेखाङ्क ८१.

३१. **प्राचीनलेखसंग्रह**, सं० आचार्य विजयधर्मसूरि, भावनगर १९२९, लेखाङ्क १०६.

३२. **जैनलेखसंग्रह**, सं० पूरनचन्द नाहर, भाग-२, कलकत्ता १९२७, लेखाङ्क १०७८.

३३. वही, लेखाङ्क १००३.

३४. **प्रतिष्ठालेखसंग्रह**, सं० विनयसागर, कोटा १९५३, लेखाङ्क ७१२.

३५. वही, लेखाङ्क ९३७.

३६. त्रिपुटी महाराज, **जैन परम्परानो इतिहास**, भाग १, अहमदाबाद १९५२, पृ० ३०१ और आगे.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org